International Journal of Applied Research 2015; 1(11): 1125-1127

ISSN Print: 2394-7500
ISSN Online: 2394-5869
Impact Factor: 5.2
IJAR 2015; 1(11): 1125-1127
www.allresearchjournal.com
Received: 14-09-2015
Accepted: 15-10-2015

राजेश कुमार
शोधार्थी, इतिहास विभाग
मगध विश्वविद्यालय, बोधगया,
बिहार, भारत

Corresponding Author:
राजेश कुमार
शोधार्थी, इतिहास विभाग
मगध विश्वविद्यालय, बोधगया,
बिहार, भारत

बौद्ध धर्म का उद्भव एवं भारत के बाहर प्रसार

राजेश कुमार

प्रस्तावना

बौद्ध धर्म के उद्भव के समय तथा उद्भव के पूर्व भारत में वैदिक धर्म का प्रचलन था। वैदिक काल में यज्ञ के द्वारा मनुष्य देवताओं को प्रसन्न और उनके प्रसाद से अपना कलयाण करते थे। यज्ञ मंत्र पूर्वक देवताओं के लिए द्रव्य त्याग को कहा गया है। तत्कालीन समय में यज्ञ और उसके फल का संबंध देव शक्ति के द्वारा ही सम्पन्न होता था और इस प्रकार का फल प्रदत्त ही देव सत्ता का वास्तविक अर्थ क्रियाकारित्व है।

मध्य और उत्तरवैदिक काल में दूर तक प्रभाव डालने वाले सामाजिक और धार्मिक परिवर्त्तन हुए। भाषा का परिवर्त्तन और चातुर्यवर्ण का विकास होने के कारण ऋग वैदिक (पूर्व वैदिक) काल की जनता विशः अब वैश्यों और शूद्रों में विभक्त हो गयी थी। शूद्र वर्ण में आर्योतर जाति की प्रधानता थी। परन्तु, आर्योतर ही केवल शुद्र नहीं थे, बल्कि वर्णाश्रम धर्म के अंतर्गत शुद्रों वर्णो की एक श्रेणी आर्यो की भी थी। इस प्रकार तत्कालीन वैदिक जातिय और सांस्कृतिक दृष्टियों से मिश्रित संकीर्ण और एक पुरानी परंपरा से बोझिल जटिल समाज में परिवर्तित हो रहा था। इन परिस्थितियों में प्रकृति के नियमानुसार पुरानी विधाओं पर संशय और नवीन तत्व विचार जन्म अनिवार्य था। फलतः वौदिक धर्म भी परिवर्तन ग्रस्त था और देवताओं के प्राधान्य तथा यज्ञ मृत्यों और अमृत्यों की सहयोगिता को छोड़ ब्रह्म विधा और आत्म विधा की ओर विकसित हो रहा था। देव यजन से आत्म यजन का यह विकास प्रवृति से निवृति की ओर दिग्दर्शक बन गया। निवृति मार्गो का यह उन्मेष अभी कुछ ही विचारशील व्यक्तियों में हुआ था। इस परिवर्तन का मुख्यतः श्रमन विचारधारा का प्रभाव था, जिसके लिए जातीय और सांस्कृतिक संमिश्रण तथा बाह्मण धर्म के आंतरिक विकास ने अब मार्ग प्रशस्त कर दिया। बहुदेव वाद का स्थान एकेश्वरवाद तथा ब्रह्मवाद ने ले लिया। इन चितिविषयक विधाये आगे चलकर उपनिषद कालीन विधाओं अथवा उपसनाओं में परिणत हुई। इस प्रकार मनीषियों का ध्यान देव यजन से आम्त विधा और ब्रह्ा विधा की ओर गया। कर्मवाद का प्रभाव दैववाद मात्र की पुरानी स्थिति के लिए प्रतिकुल सिद्द हुआ। चित्ति निर्माण में ईटों का प्रयोग तथा प्रारंभिक पंच पशुवध प्राचीन आर्यतरीय प्रभाव का उन्मञ्जन हुआ।

ई0पू0 छठी शताब्दी में समस्त संसार में व्यापक रूप से धर्म सुधार आन्दोलन हुआ जिसे धार्मिक क्रांति की संज्ञा दिया जा सकता है। चीन, यूनान और भारत में बौद्धिक और अध्यात्मिक प्रतिभा का आश्चर्यजनक स्फुरण देखकर ऐसा प्रतीत होता है कि मानों पिछली अनेक सहस्त्राब्दियों की पर्येषणा के बाद मानव–जाति मात्र के लिए अभि सम्बोधि का युग उपस्थित हुआ हो। इस व्यापक आध्यात्मिक क्रांति के लिए भौतिकवादी दृष्टिकोण के अनुसार मानव चेतना के परिर्वतनों का कारण सामाजिक धरातल की समझना आवश्यक है। अध्यात्वादी दृष्टि के अनुसार चेतनागत क्रांति ज्ञान के स्वाधीन विकास प्ररेणा से ही उत्पन्न होती है। इन दोनों दृष्टियों में से किसी की भी अवहेलना नहीं की जा सकती। वस्तुतः दोनों ही परस्पर सापेक्ष है। जहॉ भौतिक सामाजिक परिवर्तन के पीछे भी अन्ततोगत्वा नवीन आविष्कार और जननी प्रतिभा कारण रूप में विद्यमान है, वहीं दूसरी ओर सामाजिक धरातल के अनुकूल न होने पर किसी भी आध्यात्मिक बीज का प्रबल एतिहासिक परम्परा के रूप में प्ररोह असंभव है। तत्कालीन समय में अनेक महापुरूषों और मनीषियों के चिंतन और उपदेश के साथ ही महत्वपूर्ण आर्थिक और सामाजिक परिवर्तन भी दृष्टिगोचर होते है, जिन्होंने न्यूनाधिक मात्रा में कुछ सामाजिक वर्गो के लिए क्लेश और उसके द्वारा जिज्ञासा के भाव को जन्म दिया। सामाजिक परिवर्तन और आर्ति (दुःख) का अनुभव निसंदेह धर्म और दर्शन की नयी सराणियों की खोज से संबंध रखता है, किन्तु सामाजिक क्रांति नवीन चिंतन की अपेक्षा मात्र को जन्म देती है, उसके विषय और प्रकार का निर्णय नहीं करती है। संस्कृति के आध्यात्मिक पक्ष के विकास में प्रतिभा बीज का कार्य करती है, और सामाजिक स्थिति भूमिका निभाती है। दोनों के सहयोग से ही नवीन अध्यात्मिक परम्पराऍ बनती है और बढती है।

भारत में छठी शताब्दी ई0पू0 तक जनों के संचार और सनिवेश का युग बीत चुका था और राज्य के संगठन में साजात्य की अपेक्षा देश तत्व अधिक महत्वशाली हो गया था फलतः जनों का स्थान जनपदों ने ले लिया था जिनमें कुछ राजाधीन थे और कुछ गणाधीन थे। अंगुतर निकाय (पृष्ठ–5) के एक सूची के अनुसार तत्कालीन समय में सोलह महाजनपद थे। ये जनपद आपस में परस्पर संघर्ष में निरत थे। राजाओं का पारस्परिक संघर्ष उतना ही तीव्र था जितना की राजाधीन और गणाधीन जनपदों का उनकी स्थिति परिवर्तनशील थी। राजाओं और उनके मित्रों के जीवन–यापन के लिए अनेक व्यसन थे – मृगया, धूत पान, स्त्रियॉ और युद्ध आदि परन्तु, अनेक राजा अपने अवकाश में नवीन धर्म दर्शन की प्रवृतियों को प्रोत्साहन देते थे। वस्तुतः ब्रह्मणों के समान ही क्षत्रिय भी उस युग में बौद्धिक जीवन का नेतृत्व करते थे। उपनिषदों में अनेक ज्ञानी राजाओं का वर्णन आता है, जैसे पंचालराज प्रवाहण, जैविल जिन्होंने श्वेतेकेतु के पिता उद्धालक को उपदेश दिया था। कैकयराज अश्वपति और काशिराज अजा शत्रु भी ब्रह्मणों को ज्ञान का उपदेश देते पाए जाते है। विदेह राज जनक तो भारतीय अध्यात्मिक इतिहास में राजर्षि के रूप में विख्यात थे। महाभारत में कृष्ण और भीष्म भी ज्ञान का उपदेश देते है। बुद्ध और महावीर भी क्षत्रिय उपदेशक ही थे। यहॉ यह उल्लेखनीय है कि कुछ विद्धानों ने इन्हें इस युग के एक ब्राह्मण विरोधी धार्मिक सामाजिक आन्दोलन का नेता बताया गया है, परन्तु, उपर्युक्त तथ्य इस मत का निश्चित समर्थन नहीं करते। क्षत्रियों ने नवीन आध्यात्मिक और बौद्धिक आन्दोलन में महत्वपूर्ण भाग लिया, किन्तु इससे यह अनुमान नहीं लगाया जा सकता की आर्थिक लाभ, सामाजिक प्रतिष्ठा अथवा राजकीय शक्ति के लिए ब्रह्मणों और क्षत्रियों में जातिय अथवा वर्गीय संघर्ष था। अवश्य ही नैषकर्म्यपरक, अध्यात्मविद्या पौरोहित्य की विरोधीनी थी, पर इसके नेता वास्तव में श्रमण थे, जिनकी आध्यात्मिक और सांस्कृति परम्परा में उस समय क्षत्रिय और ब्रह्मण दोनों ही थे। बुद्ध जन्म से क्षत्रिय थे, किन्तु जाति के परित्यागपूर्वक ही वे श्रमण बन सके। उपलब्ध साक्ष्यों के आधार पर केवल इतना ही स्वीकार किया जा सकता है कि पुरोहित के कर्मकाण्ड का उस युग में अनेक दिशाओं में विरोध हुआ, जिसका श्रमण, प्रवुद्ध क्षत्रियों और अध्यात्यवादी ब्रह्मणों ने नेतृत्व किया। बुद्ध उन्हीं में एक थे। बुद्ध के शिक्षाओं एवं उनके दर्शनों को मानने वाले ही श्रमणों कलान्तर में बौद्ध कहलाए।

बौद्ध धर्म का भारत एवं भारत से बाहर प्रचार एवं प्रसार का स्वर्णिम काल मगध का मौर्य सम्राट अशोक का शासन काल माना गया है। पाटलिपुत्र में तृतीय बौद्ध संगीति की समाप्ति के पश्चात् स्थविर तिष्य ने सम्राट अशोक के निर्देशानुसार तत्कालीन भारत एवं अन्य देशों में जो धर्मप्रचारक भेजे गए थे उनकी सूची (पृष्ठ 10) निम्न है –

1. कश्मीर और गंधार – स्थविर मंझन्तिक
2. महिषमंडल – स्थविर महादेव
3. बनवास (मैसूर के दक्षिण भाग) – स्थविर रक्षित
4. अपरान्तक (मुम्बई से सुरत) – धर्म रक्षित
5. महाराष्ट्र – महा धर्म रक्षित
6. यवन (बैक्ट्रिया) – महारक्षित
7. हिमालय के प्रदेश – स्थविर मंझन्तिक
8. सुवर्ण मूमी – स्थविर सोण एवं स्थविर उत्तर
9. सिंहल द्वीप – महेन्द्र, संघमित्र, भद्रसाल

सम्राट अशोक ने यवन के पांच देशों में अन्तमहायात्र, चिकित्सालय, विश्रामगृह कूप, प्याऊ आदि स्थापित कर वहॉ की जनता में भारत और उसके धर्म, बौद्ध धर्म के प्रति सम्मान का भाव उत्पन्न करने का प्रयास किया था। धर्मदूत महारक्षित जब प्रचार मण्डल के साथ गया तो बौद्ध धर्म के प्रचार प्रसार के लिए जमीन तैयार पाया। इनके प्रयासों से यवन में चिरकाल तक बौद्ध धर्म का प्रभाव रहा, जिसका उल्लेख आगे चलकर दसवी शताबदी में अलवरूनी ने भी किया है, जबकि उस समय तक इस्लाम धर्म का प्रचार–प्रसार उन क्षेत्रों में हो चुका था।

सिंहली इतिहास ग्रंथ महावंश के अनुसार तृतीय बौद्ध संगीति के सभापति महास्थविर मोगलिपुत्र ने भिक्षु सोण और उतर के नेतृत्व में सुवर्ण भूमि (वर्मा) में बौद्ध धर्म के प्रचार प्रसार के लिए प्रचार मण्डल भेजे थे। स्थविरों की अलौकिक शक्ति से प्रभावित होकर वहॉ के बहुत से लोगों द्वारा बौद्ध धर्म की दीक्षा ग्रहण कर ली गयी थी। तिब्बती इतिहासकार लामा तारानाथ के अनुसार वर्मा में हीनयान बौद्ध धर्म का प्रसार मगध सम्राट अशोक के समय में ही हो चुका था। इस बात की सम्पुष्टि अशोक के शिलालेख से भी हो जाती है, जबकि महायान बौद्ध धर्म का वहॉ प्रचार आचार्य वशु बंधु के काल में हुआ माना जाता है। वहॉ आज भी अनेक विख्यात बौद्ध बिहार पूर्व काल में ही निर्मित हो चुके थे, जिससे स्पष्ट होता है कि प्राचीन काल में ही सुवर्ण भूमि में बौद्ध धर्म का प्रचलन था, जो आज भी वहॉ के राजधर्म बना हुआ है।

देवनामप्रिय तिष्य के आग्रह पर सम्राट अशोक ने अपने अग्रज पुत्र महेन्द्र एवं पुत्री संघमित्रा के साथ वोधिवृक्ष की एक मूल शाखा को श्रीलंका भेजते हुए वहॉ बौद्ध धर्म के प्रचार–प्रसार के लिए चार अन्य भिक्षु–भिक्षुणी 1. इत्तिय 2. उत्तिय 3. सम्बल और भद्रसाल को भेजा। राजा देवनामप्रिय तिष्य ने महेन्द्र के लिए एक बौद्ध महाविहार एवं संघमित्रा के लिए भिक्षुणी विहार का निर्माण कराया। राजा तिष्य की बौद्ध धर्म में श्रद्धा के कारण श्रीलंका में शीघ्र ही बहुत से बौद्ध विहारों, चैत्यों आदि का निर्माण हुआ और बहुत से स्त्री और पुरूषों ने बौद्ध धर्म की दीक्षा ग्रहण किए। धीरे–धीरे श्रीलंका की अधिकांश जनता बौद्ध धर्म की दीक्षा ली।

महापंडित राहुल सांकृत्यायन के अनुसार जनश्रुति तो चीन में बौद्ध धर्म का प्रवेश ईसा पूर्व में ही बतलाती है, किन्तु, 56 ई0 में खोतन के काश्यप मांतग द्वारा चीन में एक महत्वपूर्ण छोटे बौद्ध सूत्र का अनुवाद चीनी भाषा में किया गया। प्रमाणिक आधार पर सम्राट कनिष्क के काल में चीनी सम्राट द्वारा भारतीय बौद्ध आचार्य कुमार जीव को चीन में बौद्ध धर्म के प्रचार के लिए चीन ले जाया गया। चीनी यात्री फाहियान (399–413 ई0) ने भारत के बौद्ध स्थलों का भ्रमण कर बौद्ध धर्म के सिद्धांतों से पूर्ण परिचित हुआ। इसके बाद चीनी यात्री हवेनसांग (629–645 ई0) ने भारत के हरेक बौद्ध स्थलों का भ्रमण किया, जहॉ–जहॉ भगवान बुद्ध का चरण गया था। हव्नेसांग ने नालन्दा विश्वविद्यालय में अध्ययन किया। इसके बाद चीनी यात्री इत्सिंग (671–695 ई0) में भारत की यात्रा की तथा अपने यात्रा वृत्तांत में पचास से अधिक चीनी यात्रियों का उल्लेख किया है, जो भारत भ्रमण के लिए आए थे।

प्राचीन काल में भारत के बाद चीन के राजाओं ने बौद्ध धर्म को राजधर्म बनाया था। वहॉ आज भी बौद्ध धर्म की स्थिति भारत से उन्नत अवस्था में है।

तिब्बत (भोट) देश का समुद्र तल से लगभग 14 हजार फीट की ऊचांई एवं भारत से इसका दुर्गम पहाड़ो से गुरने बाली रास्ता तथा तिब्बत के वर्फिली मौसम भारतियों के अनुकूल नहीं रहने के कारण बौद्ध धर्म का प्रवेश तिब्बत में काफी विलम्ब 6 शताब्दी ईसा में हुआ। तिब्बत में बौद्ध धर्म के प्रवेश के समय तिब्बत का मूल धर्म बोन धर्म प्रचलित था। तिब्बती राजाओं के 28वें राजा ल्हा–थो–थोरी (441 ई0) को बौद्ध धर्म प्रचारक द्वारा राजा को सौंपे गये बौद्ध ग्रंथ एवं चैत्य प्रतिमा को राजमहल पर आकाश से गिरने की बात जनता को बताई गयी जिसे पवित्र मान कर उसी समय से उनकी पुजा की जाने लगी। तिब्बत में बौद्ध धर्म की शुरुआत राजकीय सत्ता के संरक्षण में हुआ और इसके लिए शिक्षक (आचार्य) भारत से बुलाये गये इनमें आचार्य शन्तरक्षित एवं पद्मसंभव प्रमुख थे। एतिहासिक वर्णनो में कहा गया है कि तिब्बत की कल्पना जमीन पर चित पड़ी एक राक्षसी के रुप में की गई थी और उसकी हानीकारक शक्तियों को बस में करने के

लिए उसके शरीर पर स्थित निश्चित एक्युपंचर बिन्दुओं पर मंदिर का निर्माण करने की आवश्यकता थी। इसलिए एक विशाल भौगोलिक क्षेत्र में 13 मंदिरों का निर्माण किया गया, ताकी तिब्बत के राक्षसी स्भाव को नियंत्रित किया जा सके। इन मंदिरों और तिब्बती राजाओं के वंशावली के 33वें राजा स्त्रोड़–चन–गम पो की चीनी एवं नेपाली पत्नियों द्वारा अपने साथ लाई गयी बुद्ध प्रतिमाओं के साथ ही तिब्बत में बौद्ध धर्म की शुरुआत हुई। कालन्तर में तिब्बती बौद्ध धर्म विकसित होकर केवल तिब्बत में हीं नहीं बल्कि पूरे हिमालय क्षेत्र, मंगोलिया, चीन आदि क्षेत्रों में भी यह एक प्रमुख धर्म बनगया।

संदर्भ

1. महावंश
2. The age of Imperial unity.
3. A Preliminary of Kalyani Inseription of Dhamma ceti.
4. Tarantha' s History Buddhism in India.
5. Hindusim and Buddhism, Vol III
6. अशोक – हिन्दी अनुवाद – डॉ0 डी0 आर0 भण्डारकर
7. तिब्बत का बौद्ध धर्म – राहुल सांकृत्यायन